कविता/ठेके पर देश

डॉ. रामवीर

देख रहा हूं धीरे धीरे
बदल रहा परिवेश,
देश दिया करता था ठेका
अब ठेके पर देश।

सब कुछ ठेके पर देने का
जब से चला रिवाज,
ठेके पर ही होने लगे अब
सब सरकारी काज।

ठेकेदार और ठेकेदार ही
दिखते चारों ओर,
कई दौरों से गुजरा भारत
अब ठेकों का दौर।

सरकारी दफ्तर भी अब तो
कहने को सरकारी,
उन में भी अन्दर ही अन्दर
चल रही ठेकेदारी।

डेटा ओपरेटर ठेके पर
ठेके पर कम्प्यूटर,
उन के ऊपर बैठे मिलते
कुछ सरकारी अफसर।

अफसर का भी पोस्टिंग ट्रांसफर
एक तरह ठेके पर,
कौन कहां किस पद पर होगा
नेताओं पर निर्भर।

नेताओं को नेतागिरी का
ठेका देते वोटर,
राजनीति का ठेका उठाते
ब्राह्मण ठाकुर गुर्जर।

कहीं जाट पंजाबी कहीं पर
भारी हैं बिश्नोई,
राजनीति ठेके पर दे कर
जनता रहती सोई।

जनता के सोने का मतलब
फूटी देश की किस्मत,
अपना मत बतलाया कोई
सहमत हो या असहमत।

समस्या नीरो नहीं, नीरो के मेहमान थे...

मनीष आजाद

रोम जल रहा था और नीरो बंसी बजा रहा था'- इसके बारे में हम सब जानते हैं। लेकिन इसके आगे की कहानी कहीं अधिक भयावह है। जब रोम जल रहा था तो लोगों का ध्यान बंटाने के लिए नीरो ने अपने बाग में एक बड़ी पार्टी रखी। लेकिन समस्या प्रकाश की थी। रात में प्रकाश की व्यवस्था कैसे की जाय। नीरो के पास इसका समाधान था। उसने रोम के कैदियों और गरीब लोगो को बाग के इर्द गिर्द इकट्ठा किया और उन्हे जिन्दा जला दिया। इधर रोम के कैदी और गरीब लोग जिन्दा जल रहे थे और उधर इसके प्रकाश में नीरो की 'शानदार पार्टी' आगे बढ़ रही थी। इस पार्टी में शरीक लोग कौन थे? ये सभी नीरो के गेस्ट थे-व्यापारी, कवि, पुजारी, दार्शनिक, नौकरशाह आदि।

2009 में आयी 'दीपा भाटिया' की सशक्त डाक्यूमेन्टरी 'ह्द्रह्श'ह्य तह्वद्गह्यह्ल्ह्य' में उपरोक्त कहानी को उद्धृत करते हुए विख्यात जन पत्रकार 'पी साइनाथ' इतिहासकार 'टैसीटस' के हवाले से कहते हैं कि नीरो के मेहमानों में से किसी ने भी इस पर सवाल नही उठाया कि प्रकाश के लिए इन्सानों को जिन्दा क्यो जलाया जा रहा है। बल्कि पार्टी के सभी गेस्ट जलते इन्सानों की रोशनी का पूरा लुत्फ ले रहे थे। फिल्म में पी साइनाथ आगे कहते हैं कि यहां समस्या नीरो नही है। वह तो ऐसा ही था। समस्या नीरो के गेस्ट थे। जिनमें से किसी ने भी इस पर आपत्ति नही की।

इस कहानी को आज के भारत से जोड़ते हुए पी साइनाथ आज के नीरो और उनके मेहमानों की पूरी फौज को जिस तरीके से इस फिल्म में बेनकाब करते हैं, वह स्तब्ध कर देने वाला है। पी साइनाथ उन लाखों करोड़ो लोगों के दुःख दर्द को भी शिद्दत से बयां करते हैं जो आज नीरो और उनके मेहमानो के लिए 'जिन्दा जलने' को बाध्य हैं।

डाक्यूमेन्टरी वास्तव में किसानों की विशेषकर विदर्भ के किसानों की आत्महत्याओं और भारत में बढ़ती असमानता पर है। इस पूरे मामले में मीडिया नीरो के गेस्ट की तरह ही काम कर रहा है।

पी साइनाथ बताते है कि जब विदर्भ में 8-10 आत्महत्यायें प्रतिदिन हो रही थी तो उसी समय मुम्बई में 'लक्में फैशन वीक' चल रहा था। 'लक्में फैशन वीक' को कवर करने के लिए बाम्बे में करीब 500 पत्रकार मौजूद थे, लेकिन विदर्भ की आत्महत्याओं को कवर करने के लिए कोई भी पत्रकार नही था।

एक अर्थ में देखे तो यह डाक्यूमेन्टरी पी साइनाथ पर केन्द्रित है। लेकिन इसे इस तरह से तैयार किया गया है कि यह किसानों की आत्महत्या, असमानता और मीडिया के रोल पर पी साइनाथ के काम और उनके विचारों कर केन्द्रित हो जाता है। पी साइनाथ इन ज्वलन्त विषयों के लिए सिर्फ माध्यम भर रह जाते है। विषय प्रमुख हो जाता है।

पी साइनाथ के काम और उनकी पत्रकारिता की यह खास बात है कि वे चीजों को ऐसे कोण से उठाते हैं कि आप न सिर्फ उस विषय से परिचित होते है वरन् अन्दर तक विचलित भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए पी साइनाथ विदर्भ के किसानों की आत्महत्याओं पर बात करते हुए बताते हैं कि विदर्भ में करीब 8 घण्टे बिजली की कटौती रहती है, लेकिन इस कटौती से पोस्टमार्टम करने वाले अस्पतालों को मुक्त रखा गया है क्योकि वहां 24 घण्टे आत्महत्या किये हुए किसानों की लाश लायी जा रही हैं।

आत्महत्या के आर्थिक पहलुओं की पड़ताल करते हुए यह डाक्यूमेन्टरी बताती है कि ये आत्महत्यायें एक तरह से हत्या है जो सरकार की अमीर परस्त और साम्राज्यवाद परस्त नीतियों का नतीजा है। इन्ही नीतियों

का परिणाम है कि भारत में असमानता किसी भी देश से कही तेज गति से आगे बढ़ रही है। पी साइनाथ इसे रोचक तरीके से यूं कहते है- 'भारत में सबसे तेज गति से विकसित होने वाला सेक्टर आई टी सेक्टर नही है। यह 'असमानता' का सेक्टर है।' हाल में आयी 'ऑक्सफैम' की रिपोर्ट 'सरवाइवल ऑफ दी रिचेस्ट' इस बात को बहुत मजबूती से स्थापित करती है।

असमानता की चर्चा करते हुए पी साइनाथ एक सच घटना को बयां करते हुए बताते हैं कि जब धीरुभाई अंबानी की मौत हुई तो अखबार वालों ने प्रशंसा भाव से यह रिपोर्ट लगायी कि उनकी चिता के लिए 450 किलोग्राम चंदन की लकड़ी इस्तेमाल हुई। और इसे कर्नाटका से मंगाया गया। उसी समय कर्नाटक के ही गुलबर्ग शहर के एक गांव में एक दलित सुशीलाबाई के पति की मौत हो गयी। इस गांव में यह प्रथा है कि दलित अपने परिजनों को दफनाते हैं जबकि गांव की ऊंची जातियां अपने परिजनों को जलाती हैं। लेकिन इस दलित को दफनाया भी गया और जलाया भी गया। क्यो? क्योकि गांव के ऊंची जातियों के लोगों ने गांव के नजदीक उसे दफनाने की इजाजत नही दी। वास्तव में जब दफनाने की प्रक्रिया चल ही रही थी उसी समय ऊंची जाति के लोगों ने आकर जबर्दस्ती इसे बीच में ही रोक दिया। मजबूरन सुशीलाबाई ने अपने पति के मृत शरीर को चिता के हवाले किया, लेकिन आवश्यक लकड़ी और तेल का पूरा इन्तजाम न कर पाने के कारण वह मृत शरीर आधा ही जल पाया। यह है इस देश के एक गरीब दलित की नियति। उसका दलित होना मौत के बाद भी उसका पीछा नही छोड़ता।

डाक्यूमेन्टरी में आत्महत्या करने वाले एक किसान 'श्री कृष्णा कालंब' की दो कविताओं को उद्धृत किया गया है। पहली कविता की एक पंक्ति ही है कि 'हम अपने परिजनों को आधा ही जला पाते हैं।'

दूसरी कविता और भी मार्मिक है-

भूखा बच्चा
अपनी मां से रोटी मांगता है,
मां, आंखों में आंसू लिए
रक्तिम होते सूर्य की ओर इशारा करती है।

तो मुझे वही रोटी दे दो ना,
मैने रात से कुछ नही खाया,
भूख से पेट सिकुड़ रहा है।
उस गरम रोटी को ठंडा होने दे मेरे बच्चे।
अभी यह इतना गरम है कि
तेरे मुंह में छाले पड़ जायेगे।
गर्म सूरज की यात्रा खत्म हुई,
और वह पहाड़ के पीछे डूब गया।
और उस रोटी के इन्तजार में
भूखा बच्चा
एक बार फिर भूखा ही सो गया।

कुल मिलाकर यह उन कुछ चुनी हुई डाक्यूमेन्टरी में से एक है जिसे देखने के बाद आपकी दुनिया और दुनिया को देखने का आपका नजरिया वही नही रह जाता। यह फिल्म इसलिए भी देखनी चाहिए कि इसे देखकर हम अपने आपसे यह सवाल कर सकें कि कहीं हम भी तो नीरो के मेहमानों में शामिल नहीं हो चुके हैं?

और यह सवाल अपने आपसे बार बार पूछा जाना चाहिए। क्योकि नीरो के मेहमानों की तादाद आज काफी बढ़ चुकी है।